क्या नारी इसी दुर्दशा में पड़ी रहेगी ?

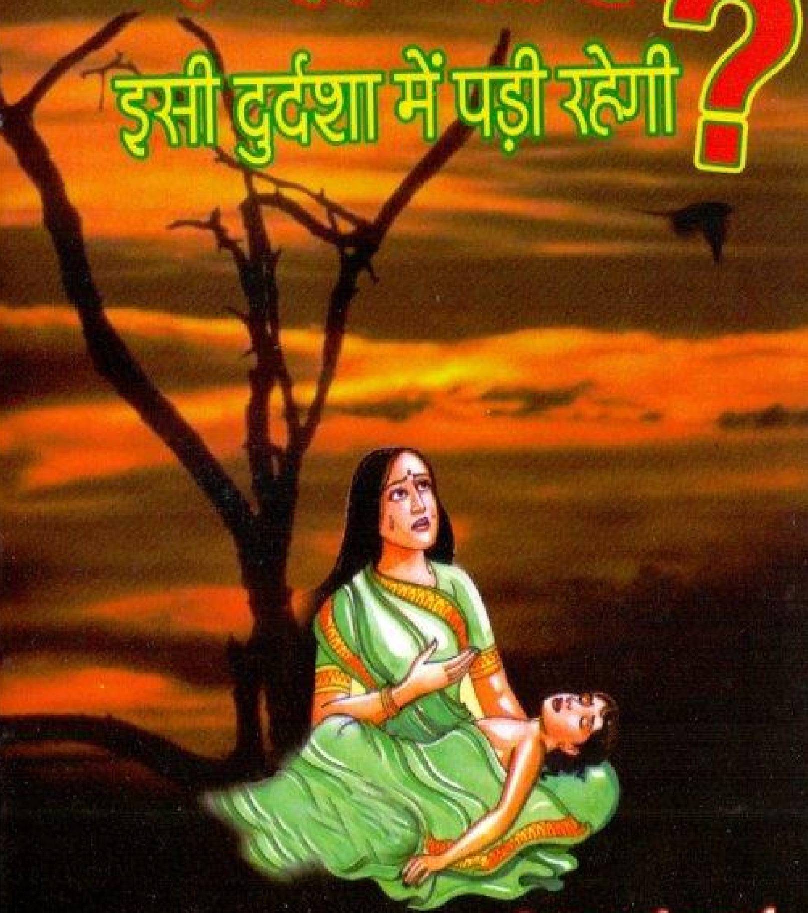

-श्रीराम शर्मा आचार्य

नारी की महानता को समझें

नारी पुरुष की पूरक सत्ता है । वह मनुष्य की सबसे बड़ी ताकत है उसके बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है । नारी ही उसे पूर्ण करती है । मनुष्य का जीवन अन्धकार युक्त होता है तो स्त्री उसमें रोशनी पैदा करती है । पुरुष का जीवन नीरस होता है तो नारी उसे सरस बना देती है । पुरुष के उजड़े हुए उपवन को नारी पल्लवित बनाती है ।

इसलिए शायद संसार का प्रथम मानव भी जोड़े के रूप में धरती पर अवतरित हुआ था । संसार की सभी पुराण कथाओं में इसका उल्लेख है । हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथ मनुस्मृति में उल्लेख है-

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनस्तेन देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्या स विराजमसृजत्प्रभुः ।।

"उस हिरण्यगर्भ ने अपने शरीर के दो भाग किये । आधे से पुरुष और आधे से स्त्री का निर्माण हुआ ।"

इस तरह के कई आख्यान हैं जिनसे सिद्ध होता है कि पुरुष और नारी एक ही सत्ता के दो रूप हैं और परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं । फिर भी कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व और त्याग के कारण पुरुष से नारी कहीं महान् है । वह जीवन यात्रा में पुरुष के साथ ही नहीं चलती वरन् उसे समय पड़ने पर शक्ति और प्रेरणा भी देती है । उसकी जीवन यात्रा को सरस, सुखद, स्निग्ध और आनन्दपूर्ण बनाती है । नारी पुरुष की शक्तियों के लिए उर्वरक खाद का काम देती है । महादेवी वर्मा ने नारी की महानता के बारे में लिखा है-

"नारी केवल मांस पिण्ड की संज्ञा नहीं है, आदिम काल से आज तक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सफल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर मानवी ने जिस व्यक्तित्व चेतना का विकास किया है उसी का पर्याय नारी है ।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि नारी धरा पर स्वर्गीय ज्योति की साकार

प्रतिमा है । उसकी वाणी जीवन के लिए अमृत स्रोत है । उसके नेत्रों में करुणा सरलता और आनन्द के दर्शन होते हैं । उसके हास्य में संसार की समस्त निराशा और कड़ुवाहट मिटाने की अपूर्व क्षमता है, नारी सन्तप्त हृदय के लिए शीतल छाया है, वह स्नेह और सौजन्य की साकार देवी है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में 'नारी पुरुष की शक्ति के लिए जीवन सुधा है । त्याग उसका धर्म, सहन-शीलता उसका व्रत और प्रेम उसका जीवन है ।''

कवीन्द्र-रवीन्द्र ने नारी के हास में जीवन निर्झर का संगीत सुना है । जयशंकर प्रसाद ने कहा है-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग-पग तल में ।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में ।।

संसार के सभी महापुरुषों ने नारी में उसके दिव्य स्वरूप के दर्शन किये है, जिससे वह पुरुष के लिए पूरक सत्ता के ही नहीं वरन् उर्वरक भूमि के रूप में उसकी उन्नति प्रगति एवं कल्याण का साधन बनती है । स्वयं प्रकृति ही नारी के रूप में सृष्टि के निर्माण, पालन-पोषण संवर्धन का काम कर रही है । नारी के हाथ बनाने के लिए ही हैं, बिगाड़ने के लिए नहीं । परिस्थिति वश-स्वभाव वश-नारी कितनी ही कठोर बन जाये किन्तु उसकी वह सहज कोमलता कभी ओझल नहीं हो सकती जिसके पावन अंक में संसार को जीवन मिलता है । प्रेमचन्द के शब्दों में नारी पृथ्वी की भाँति धैर्यवान्, शान्त और सहिष्णु होती है ।''

नारी की प्रकट कोमलता सहिष्णुता को पुरुष ने कई बार उसकी निर्बलता का चिन्ह मान लिया है और इसलिए उसे अबला कहा है । किन्तु वह यह नहीं जानता कि कोमलता, सहिष्णुता के अंक में ही मानव जीवन की स्थिति सम्भव है । क्या माँ के सिवा संसार में ऐसी कोई हस्ती है जो शिशु की सेवा, उसका पालन-पोषण कर सके संसार में जहाँ तहाँ भी चेतना साकार रूप में मुखरित हुई है उसका एक मात्र श्रेय नारी को ही है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि नारी निर्मात्री शक्ति है ।

वह समाज का धारण, पोषण करती है, सम्वर्धन करती है ।

नारी अपने विभिन्न रूपों में सदैव मानव-जाति के लिए त्याग, बलिदान, स्नेह, श्रद्धा, धैर्य, सहिष्णुता का जीवन बिताती है । माता-पिता के लिए आत्मीयता, सेवा की भावना जितनी पुत्री में है वैसी अन्यत्र नहीं होती । पराये घर जाकर भी पुत्री अपने माँ-बाप से जुदा नहीं हो सकती । उसमें परायापन नहीं आता, उसके हृदय में वही सम्मान-सेवा की भावना भरी रहती है । जैसे बचपन में थी । भाई बहिन का नाता कितना आदर्श, कितना पुण्य-पवित्र है । भाई-बहिन परस्पर जुदा हो सकते हैं, एक दूसरे का अहित कर सकते हैं, किन्तु भाई-बहिन जीवन पर्यन्त कभी विलग नहीं हो सकते । बहन जहाँ भी रहेगी अपने भाई के लिए शुभकामनायें, उसके भले के लिए प्रयत्न करती रहेगी । माँ तो माँ ही है । पुत्र की हितचिन्ता उसका भला, लाभ, हित सोचने वाला माँ के समान संसार में और कोई नहीं है, संसार के सब लोग मुँह मोड़ लें किन्तु एक माँ ही ऐसी है जो अपने पुत्र के लिए सदा सर्वदा सब कुछ करने के लिए तैयार रहती है ।

पत्नी के रूप में नारी मनुष्य की जीवन-संगिनी ही नहीं होती वह सब प्रकार से पुरुष का हित साधन करती है । शास्त्रकार ने भार्या को छः प्रकार से पुरुष के लिए हित-साधक बतलाया है-

कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी, भोज्येषु माता, रमणेषु रम्भा ।
धर्मानुकूला, क्षमया धरित्री, भार्या च षड्गण्वती च दुर्लभा ॥

"कार्य में मन्त्री के समान सलाह देने वाली, सेवादि में दासी के समान काम करने वाली, भोजन कराने में माता के समान पथ्य देने वाली, आनन्दोपभोग के लिए रम्भा के समान सरस, धर्म और क्षमा को धारण करने में पृथ्वी के समान क्षमाशील ऐसे छः गुणों से युक्त स्त्री सचमुच इस विश्व का एक दुर्लभ रत्न है ।"

राम के जीवन से सीता को निकाल देने से रामायण में कुछ नहीं रहता । द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी आदि का चरित्र निकाल देने पर

महाभारत की महान गाथा कुछ नहीं रहती, पाण्डवों का जीवन संग्राम अपूर्ण रह जाता है । शिवजी के साथ पार्वती, कृष्ण के साथ राधा, राम के साथ सीता, विष्णु के साथ लक्ष्मी का नाम हटा दिया जाय तो इनके लीला, गाथा, चरित्र अधूरे रह जाते हैं ।

प्राचीनकाल से नारियाँ घर गृहस्थी को ही देखती नहीं आ रही, समाज, राजनीति, धर्म, कानून, न्याय सभी क्षेत्रों में वे पुरुष की संगिनी ही नहीं रहीं वरन् सहायक, प्रेरक भी रहीं हैं । उन्हें समाज में पूजनीय स्थान दिया गया है । महाराजा मनु ने भी अपनी प्रजा से कहा था-

"यत्र नर्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।"

जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं । क्योंकि समाज में नारी को सम्मान्य और पूज्य स्थान देकर जब इसे पुरुष का सहायक बना लिया जाता है तो ही समृद्धि, यश, वैभव बढ़ते हैं, जिससे सुख-शान्ति और आनन्दपूर्वक जीवन बिताया जा सकता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि नारी का सहयोग मानव-जीवन में उन्नति के लिए आवश्यक है, अनिवार्य है । वह समाज उन्नति नहीं कर सकता, जहाँ स्त्री, जो मानव-जीवन का अर्धाङ्ग ही नहीं एक बहुत बड़ी शक्ति है, को सामाजिक अधिकारों से वंचित कर उसे लुंज-पुंज एवं पद-दलित बनाकर रखा जाता है ।

आवश्यकता इस बात की है कि हम नारी को समाज में वही प्रतिष्ठा दें, जिसकी आज्ञा हमारे ऋषियों, मनीषियों ने दी है । उसे जीवन के सभी क्षेत्र में आगे बढ़ायें । हम देखेंगें कि नारी अबला, असहाय न रहकर शक्ति सामर्थ्य की मूर्ति बनेगी । वह जीवन यात्रा में हमारे लिए बोझ न रहकर हमारी सहायक सहयोगिनी सिद्ध होगी । तब हमें उसके भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित न होना पड़ेगा । वह अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ होगी । अपना निर्वाह करने में समर्थ होगी । हमारे सामाजिक जीवन की यह एक बहुत महत्वपूर्ण माँग है कि सदियों से घर की चहारदीवारी में बन्द, पर्दे, बुर्के की ओट में छिपी हुई पराश्रिता,

परावलम्बी, अशिक्षित, अन्धविश्वास-ग्रस्त संकीर्ण स्वभाव नारी को वर्तमान दुर्दशा से उबारें । उसे समानता, स्वतन्त्रता की मानवोचित सुविधा प्रदान करें । उसे शिक्षित, स्वावलम्बी, सुसंस्कृत एवं योग्य बनावें तभी वह हमारे विकास में सहायक बन सकेगी ।

स्त्री की हीनता समस्त समाज को हीन बनाती है

भारतीय स्त्रियों की स्थिति वर्तमान समय में बड़ी डाँवाडोल हो रही है । देश के नव-निर्माण के कार्य में भाग लेने को उनका आह्वान किया जाता है, राष्ट्र की रक्षा और उद्धार के कार्य में अग्रसर होने की उनको प्रेरणा दी जाती है । समाज की भावी पीड़ी का सुधार करके आदर्श नागरिकों का निर्माण उनका कर्त्तव्य बतलाया जाता है । पर उनकी स्थिति, शक्ति, अधिकार, योग्यता, साधन कैसे और कितने हैं ? इस पर कोई ध्यान नहीं देता ? हम उसके नोंकरी करने को निकृष्ट कहते हैं, घर की सम्पत्ति पर भी उनका अधिकार नहीं मानते, पर समाजोद्धार और राष्ट्रोत्थान के सब कामों में उनसे सहायता पाने की आशा रखते हैं । हम उनके शारीरिक विकास और सुदृढ़ स्वास्थ्य की कोई व्यवस्था नहीं करते और न सन्तान पालन की उचित शिक्षा देते हैं, पर उनसे सुमाता बनने की माँग करते हैं । हम उनको कालेजों में भेजकर लड़कों के साथ ही बाह्य प्रदर्शन को प्रधानता देने वाली निकम्मी शिक्षा दिलाते हैं और चाहते हैं कि वे सीता, सावित्री जैसी प्राचीन देवियों का उदाहरण उपस्थित करें । इस प्रकार की विपरीत बातें कैसे हो सकती हैं ? नीम और बबूल बोकर आम के फलों की अभिलाषा किस प्रकार पूरी हो सकती है ?

जब हम अपनी स्त्रियों की स्थिति पर दृष्टिपात करते हैं तो विदित होता है कि हम मुँह से चाहे जो कुछ कहते हों और हमारे शास्त्रों में भी चाहे स्त्रियों के विषय में कैसी भी उच्च बातें लिखी हों, पर व्यवहार में हम उनको वास्तव में हीन समझते हैं, और यह हीनता की भावना कन्या का जन्म होते ही प्रकट होने लग जाती है । आज हिन्दू समाज में सौ में

से एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं मिल सका जो पुत्री का जन्म होने पर भी वैसी ही प्रसन्नता का अनुभव करे जैसे पुत्र के जन्म पर करता है । अधिकांश व्यक्ति तो उनके जन्म को महा अभाग्य जनक समझते हैं । उनके मित्र और सम्बन्धी भी कन्या उत्पन्न होने का समाचार सुनकर कहने लगते हैं, 'लो तुम्हारे लिए तो एक बड़ी डिग्री आ गई ।' अन्य जो अधिक समझदार होते हैं अपने असंतोष को इस प्रकार प्रकट नहीं होने देते और कहते हैं कि भगवान ने जो कुछ दिया वह ठीक ही है ।" यद्यपि वे मुख से ऐसा कहते हैं पर उत्साह रहित वाणी और नेत्रों के भाव से स्पष्ट दिखाई देता है कि वे पुत्र के मुकाबिले में पुत्री के जन्म को कुछ भी प्रसन्नता का विषय नहीं समझते ।

जैसे-जैसे लड़की बड़ी होती है, यह भेद-भाव दिन पर दिन अधिक प्रत्यक्ष होता जाता है । लड़के लड़की के पालन-पोषण, खेलने कूदने, शिक्षा-दीक्षा में सर्वत्र लड़के को ही प्रधानता दी जाती है । यद्यपि बड़े और आधुनिक सभ्यता से थोड़ा बहुत प्रभावित घरों में यह अन्तर अधिक दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि वहाँ इतने साधन होते हैं कि वे सब बच्चों के लिए आवश्यकतानुसार व्यवस्था कर सकते हैं । पर मध्यमवर्गीय और निम्न श्रेणी के घरों में पहले लड़के के आराम और आवश्यकता का ध्यान रखा जाता है और लड़की को बचे-खुचे पर ही संतोष करना पड़ता है । पुराने विचार के घरों की स्त्रियाँ तो छोटेपन से लड़की को तरह-तरह से ताने और कुवाक्य कहकर यह जतलाया करतीं हैं कि वह परिवार का भार स्वरूप है और जितना शीघ्र उसका "मुँह काला" हो जाय उतना ही अच्छा है । साधारण बात-चीत में लड़की को 'राँड', 'पत्थर' आदि कहा जाता है और आमोद के अवसर पर भी उनके मरने गिरने की बात मुँह से निकाल दी जाती है ।

इस परिस्थिति के कुछ कारण भी हैं । हमारे कुसंस्कार और अन्ध परम्परायें तो इसमें प्रमुख हैं ही, पर साथ ही वर्तमान समाज में अनेक हानि कारक सामाजिक प्रथायें इस बुराई को बढ़ा रही हैं । इस सम्बन्ध

में हमारे विचार करने का तरीका बहुत ही गलत बनगया है । हम सोचते हैं कि कन्या पर खर्च ही खर्च है, और लड़कों से आमदनी ही आमदनी है । लड़का वंश की परम्परा चलाता है, आशा की जाती है कि वह बड़ा होने पर कमायेगा, माँ-बाप का भरण-पोषण करेगा । फिर अन्त तक वह उसी कुटुम्ब का अङ्ग रहेगा । इस प्रकार पुत्र में निजत्व की, अपने पन की भावना अधिक होती है, जब कि लड़की के प्रति शुरू से ही पराई समझने का भाव रहता है ।''

पर हम जब समाज हित की दृष्टि से विचार करते हैं तो उपर्युक्त विचारधारा अत्यन्त घातक और पतनकारी सिद्ध होती है । कौन नहीं जानता कि समाज का आधार पुरुष की अपेक्षा स्त्री पर ही अधिक होता है । जिस लड़की को आज हम उपेक्षा की दृष्टि से अविकसित, अशिक्षित और अयोग्य रखने में अपनी कोई हानि नहीं समझते, वही थोड़े समय बाद पत्नी, गृहणी और माता बनती है और समाज की भावी पीढ़ी का सन्तोषजनक रीति से पालन और विकास करने में सर्वथा असमर्थ होती है । वह अपनी संतान में भी उन्हीं दुर्गुणों और दुर्बलताओं को प्रविष्ट करती है जो पितृगृह में उसे प्राप्त हुए थे । इस प्रकार कन्याओं की उपेक्षा का प्रतिफल समस्त समाज को बहुत हानिकारक रूप में सहन करना पड़ता है और लोग अपने स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारते हैं ।

स्त्रियों की स्थिति को घटाने वाली एक बहुत बड़ी कुप्रथा दहेज की है । किसी समय माता-पिता की सम्पत्ति में से लड़की को एक भाग मिलने या स्त्री धन के रूप में मानी जाती रही होगी, पर वर्तमान समय में तो इसने स्पष्टतः 'बेचने-खरीदने' का रूप ग्रहण कर लिया है । विवाह के अवसर पर दहेज की रकम के लेन-देन में जैसा मोल-तोल और भाव-ताव होता है उसे देखकर आश्चर्य भी होता है और घृणा भी । किस प्रकार लड़के की योग्यता अथवा वंश की श्रेष्ठता के आधार पर लड़की के बाप से बड़ी-बड़ी रकमें माँगी जाती हैं । पाणिग्रहण के समय मोटर-

साइकिल आदि की 'भीख' माँगी जाती है और उसके पूरा न होने पर विवाह को अधूरा ही छोड़ देने की धमकी दी जाती है, या बाद में लड़की को अपमानित, लाँछित करके पिता के घर लौटा देने की धृष्टता दिखाई जाती है, इन सब बातों के उदाहरण प्रतिदिन देखने और सुनने में आते रहते हैं । इनको देखकर लोगों की मूढ़ता पर तरस आता है और समाज का भविष्य याद करके हृदय विचलित हो जाता है । इस प्रकार अपमानित और लांछित होने वाली लड़कियाँ किस प्रकार से ऐसे सुयोग्य नागरिकों का निर्माण कर सकती हैं जो राष्ट्र को गौरव और उत्थान के मार्ग पर अग्रसर कर सकें ?

इसलिए माता-पिता का यह परम कर्त्तव्य है कि लड़के की अपेक्षा भी लड़कियों के निर्माण और विकास पर ज्यादा ध्यान दें । इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि बहुत अधिक धन खर्च किया जाए या माँटेसरी स्कूल में सौ-पचास रुपया फीस देकर ही शिक्षा दिलाई जाए । बिल्कुल गरीब घरों में भी लड़कियों को ऐसी शिक्षा दी जा सकती है कि वे उसे अपने सहृदयतायुक्त व्यवहार, शिष्टता और परिश्रमशीलता के कारण स्वर्ग बनादें । इसके विपरीत अधिक धनवान घरों की लड़कियाँ ही प्राय: उच्छृंखलता का व्यवहार करने वाली, अभिमान और उपेक्षा का व्यवहार करके सगे-सम्बन्धियों में मनमुटाव उत्पन्न करने वाली और गृह-कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता रखकर निठल्लेपन में समय व्यतीत करने वाली सिद्ध होती हैं । अत: लड़की को पराई समझकर उपेक्षा का व्यवहार करने के बजाय यह समझना चाहिए कि लड़के-लड़की में से जो भी अयोग्य और खराब स्वभाव का निकल जायेगा वही परिवार और समाज के लिए अभिशाप सिद्ध होगा । इन दोंनो में भी लड़की का अयोग्य होना इस दृष्टि से अधिक सोचनीय है कि वह भावी पीढ़ी को जन्म देने वाली और उसकी निर्मात्री होती है । लड़का अगर खराब भी निकल जाय तो वह समाज का उतना अहित नहीं कर सकता, जितना कि लड़की के खराब निकल जाने से हो सकता है । एक लड़की कई

कुटुम्बों से सम्बन्धित होती है और अगर उसे आरम्भ से सद्‌गुणी, और सद्व्यवहार करने वाली बनाया जाय तो बहुसंख्यक लोगों की उन्नति और कल्याण का केन्द्रस्वरूप हो सकती है । वह जिस घर में जायेगी श्रम से स्वर्ग समान बना देगी, जिसका प्रभाव आस पास के भी अन्य लोगों पर अच्छा पड़ेगा । इसके विपरीत स्वभाव वाली जहाँ जायगी वहाँ ही संघर्ष, कलह और नरक का वातावरण उत्पन्न करने वाली होगी और अपने पति-गृह की अवनति नहीं करेगी वरन् अपने माता पिता की बदनामी और अपमान का कारण भी होगी ।

समाज के कर्णधारों का कर्त्तव्य है कि समाज और राष्ट्र की प्रगति में बाधा डालने वाली इस परिस्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करें । यह समस्या एक देशीय नहीं, वरन् समस्त विश्व से सम्बन्धित है संसार भर का नारी समाज अभी तक किसी न किसी प्रकार की त्रुटियों में ग्रस्त है और इससे मानव सभ्यता की प्रगति में उचित सहयोग नहीं दे सकता इस महान अभियान की पूर्ति में यदि भारत अपना भाग उचित रूप में पूरा कर सके और यहाँ की स्त्रियाँ परिवार और समाज में अपना उचित स्थान ग्रहण करके अपने जीवन कर्त्तव्य का पालन करने लगें तो यह मानव-समाज के कल्याण की दृष्टि में कम महत्व की बात न होगी । इस कार्य का आरम्भ बाल्यावस्था से ही किया जा सकता है, क्योंकि जो स्त्रियाँ घर गृहस्थी में पड़कर अपने दोषों की अभ्यस्त होगई हैं, उनका शीघ्र बदल सकना तो कठिन है ।

नारी को समुचित सम्मान एवं स्थान दीजिए

कोई भी समाज नारी-पुरुष के युग्म से बनता है, समाज ही क्यों, सच्ची बात तो यह है कि सृष्टि के क्रम का मूलभूत कारण ही यह जोड़ा है । इसमें भी नारी का स्थान प्रमुख है । क्योंकि संसार एवं सृष्टि क्रम में पुरुष एक साधारण सा हेतु है, बाकी सारा काम एकमात्र नारी को ही करना पड़ता है ।

सन्तान धारण करने के काम से लेकर उसको जन्म देने और पालन

करने का सारा दायित्व एकमात्र नारी ही उठाया करती है । सन्तान का प्रजनन एवं पालन मात्र नारी की कृपा पर ही निर्भर है । घर बसाना, उसे चलाना और उसकी व्यवस्था रखना नारी के हाथ में ही है । यदि वह अपने इस दायित्व से विमुख हो जाये अथवा उपेक्षा बरतने लगे तो कुछ ही समय में यह व्यवस्थित दिखलाई देने वाला समाज अस्त-व्यस्त और ऊबड़-खाबड़ दिखाई देने लगे । इस प्रकार यदि ध्यान से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि सृष्टि से लेकर समाज का संचालन क्रम मुख्यत: नारी पर निर्भर है । पुरुष तो इसमें एक सहायक हेतु है । तब ऐसी नारी-निर्मात्री, धात्री और व्यवस्थापिका जैसी पूजा-पात्री का तिरस्कार, अपमान, उपेक्षा तथा अवहेलना करना कहाँ तक उचित है ?

जो धारिका, धात्री और निर्मात्री हैं, यदि वह अपने तन मन से प्रसन्न और प्रफुल्ल रहेगी तो उसकी सृष्टि भी उसी प्रकार की प्रसन्न एवं प्रफुल्ल होगी और यदि वह मलीन रहती है तो उसका सृजन भी उतना ही मलीन और अयोग्य होगा । इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति, नारी का समुचित आदर करते हुए उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं ।

जब-जब जिन समाजों में नारी का समुचित स्थान रहा है, उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास की व्यवस्था रखी गई है, तब-तब वे समाज, संसार में समुन्नत होकर आगे बढ़े हैं और जब-जब इसके प्रतिकूल आचरण किया गया है, तब-तब समाजों का पतन हुआ है ।

नारी जन्मदात्री है । समाज का प्रत्येक भावी सदस्य उसकी गोद में पलकर संसार में खड़ा होता है । उसके स्तन का अमृत पीकर पुष्ट होता है । उसकी हँसी से हँसना और उसकी वाणी से बोलना सीखता है उसकी कृपा से ही जीकर और उसके ही अच्छे-बुरे संस्कार लेकर अपने जीवन क्षेत्र में उतरता है । तात्पर्य यह है कि जैसी माँ होगी, सन्तान अधिकांशत: उसी प्रकार की होगी ।

भारत के अतीत कालीन गौरव में नारियों का बहुत कुछ अंश-दान

रहा है । उस समय सन्तान की अच्छाई बुराई का सम्बन्ध माँ की मर्यादा के साथ जुड़ा था । वह अपनी मान-मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए सन्तान को बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से पालती थी। देश, काल और समाज की आवश्यकता के अनुरूप सन्तान देना अपना परम-पावन कर्त्तव्य समझती थीं । यही कारण है कि जब-जब युगानुसार सन्त-महात्मा, त्यागी, दानी, योद्धा, वीर और बलिदानियों की आवश्यकता पड़ी, उसने अपनी गोद में पाल-पाल कर दिये ।

किन्तु वह अपने दायित्व को निभा तब ही सकी है, जब उसको स्वयं अपना विकास करने का अवसर दिया गया है । जिस माँ का स्वयं अपना विकास न हुआ हो, वह भला विकासशील सन्तान देभी कैसे सकती है ? जिसको देश-काल की आवश्यकता और समाज की स्थिति और संसार की गतिविधि का ज्ञान ही न हो, वह उसके अनुसार अपनी सन्तान को किस प्रकार बना सकती है ? अपने इस दायित्व को ठीक प्रकार से निभा सकने के लिए आवश्यक है कि नारी को सारे शैक्षणिक एवं सामाजिक अधिकार समुचित रूप से दिये जायें ।

प्राचीन काल में भारत में नारी को यह सब अधिकार मिले हुए थे । उनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी । समाज में आने-जाने और उसकी गतिविधियों में भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता थी, वे पुरुषों के साथ वेद पड़ती थीं, यज्ञ में होता, ऋत्विज तथा यज्वा के रूप में बैठती थीं और धर्म-कर्मों में हाथ बटाती हई तत्व-दर्शन किया करती थीं । यही कारण था कि वे गुण, कर्म, स्वभाव में पुरुषों के समान ही उन्नत हुआ करती थीं और तभी स्त्री-पुरुष की सम्मिलत सन्तान भी उन्हीं की तरह गुणवती होती थी । जब तक समाज में इस प्रकार की मङ्गल परम्परा चलती रही, भारत का वह समय देव युग के समान सुख, शान्ति एवं सम्पन्नतापूर्ण बना रहा किन्तु ज्यों ही इस पुण्य परम्परा में व्यवधान आया, नारी को उसके समुचित एवं आवश्यक अधिकारों से वंचित किया गया, भारतीय समाज का पतन होना प्रारम्भ हो गया और ज्यों-ज्यों नारी को

दयनीय बनाया जाता रहा, समाज अधोगति को प्राप्त होता गया और अन्त में एक ऐसा अन्धकार युग आया कि भारत का सारा गौरव और उसकी सारी सांस्कृतिक गरिमा मिट्टी में मिल गई ।

कहना न होगा कि जिस प्रकार अग्रशिखा सहित ही दीपक, दीपक है, उसी प्रकार सुयोग्य, सुशील और सुग्रहिरणी के रूप में ही पत्नी, पत्नी मानी जायगी । अयोग्य विवाहितायें वास्तव में पुरुष रूपी शरीर में पक्षाघात के समान ही हैं । जीवन रूपी रथ में टूटे पहिए और उन्नति अभियान में बिखण्डित पक्ष की तरह ही बेकार है ।

इस रूप में पुरुष की पूर्ति नारी तब ही कर सकती है, जब उन्हें इस कर्त्तव्य के योग्य विकसित होने को अवसर दिया जाये । जहाँ स्त्रियों को केवल बच्चा पैदा करने की मशीन विषय-वासना का समाधान और चूल्हे-चौके की दासी भर समझ कर रक्खा जायेगा, वहाँ उससे उपर्युक्त पतनीत्व की अपेक्षा करना मूर्खता होगी ।

हमारे समाज में आज एक लम्बे युग से नारी की उपेक्षा होती चली आ रही है । जिसके फलस्वरूप धर्म-भार्या के रूप में उसके सारे गुण और समाज निर्मात्री के रूप में सारी योग्यतायें समाप्त हो गई है । उसे पैर की जूती बनाकर रक्खा जाने लगा, जिससे वास्तव में जूती से अधिक उसकी कोई उपयागिता रह भी नहीं गई है । ऐसी निम्न कोटि में पंहुँचाई गई नारी से यदि आज का स्वार्थी एवं अनुदार पुरुष यह आशा करे कि वह गृहलक्ष्मी बनकर उसके घर को सुख-शान्तिपूर्ण स्वर्ग का एक कोना बना दे उसकी सन्तानों की सुयोग्य, सुशील और सानुकूल नागिरिक के रूप में रचना कर दे तो वह दिन के सपने देखता है, आकाश-कुसुम की कामना करता है ।

यदि मनुष्य सच्ची सुख-शान्ति चाहता है और चाहता है कि उसकी नारी अन्नपूर्णा बनकर उसकी कमाई में प्रकाण्डता भरे, उसके मन को माधुर्य और प्राणों को प्रसन्नता दे, उसके परिश्रान्त जीवन में श्री बनकर हँसे और संसार-समर में शक्ति बनकर साहस दे, तो उसे पैरों से उठाकर

अर्धाङ्ग में सम्मान देना ही होगा । अन्यथा टूटे पहिए की गाड़ी के समान उसकी जिन्दगी धचके खाती हुई ही घिसटेगी । घरबार उसे बेकार का बोझ बनकर त्रस्त करता रहेगा । अयोग्य एवं अनाचारी बच्चों की भीड़ दुश्मन की तरह उसके पीछे पड़ी रहेगी ।

इस प्रकार देश, समाज, घर-गृहस्थी तथा वैयक्तिक विकास तथा सुख-शान्ति के लिए नारी की इतनी आवश्यकता जानकर भी जो उसे अधिकारहीन करके पैर की जूती बनाये रखने को सोचता है, वह देश, समाज का ही नहीं अपनी आत्मा का भी हितैषी नहीं कहा जा सकता ।

अपने राष्ट्र का मङ्गल, समाज का कल्याण और अपना वैयक्तिक हित ध्यान में रखते हुए नारी को अज्ञान के अन्धकार से निकाल कर प्रकाश में लाना होगा । चेतना देने के लिए उसे शिक्षित करना होगा । सामाजिक एवं नागरिक प्रबोध के लिए उसके प्रतिबन्ध हटाने होंगे और भारत की भावी सन्तान के लिए उसे जननी का आदर देना होगा । समाज के सर्वाङ्गीण विकास और राष्ट्र की समुन्नति के लिए यह एक सबसे सरल, सुलभ और समुचित उपाय है, उसे घर-घर में प्रत्येक भारतवासी को काम में लाकर अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना चाहिए । यही आज की सबसे बड़ी सभ्यता सामाजिकता, नागरिकता और मानवता है । वैसे घर में नारी के प्रति संकीर्ण होकर यदि कोई बाहर समाज में उदारता और मानवता का प्रदर्शन करता है तो वह दम्भी है, आडम्बरी है, और मिथ्याचारी है ।

नारी को इस दुर्दशा में पड़ा न रहने दिया जाय ?

नारी का क्या महत्व है ? इस प्रश्न का उत्तर एक शब्द में ही निहित है कि वह ''जननी'' है । यदि जननी न हो तो कहाँ से सृष्टि का सम्पादन हो और किस प्रकार समाज का सृजन ? जननी का अभाव सृष्टि की शून्यता और उसका सवभाव ही संकलन है । इस प्रकार नारी सृष्टि का मूल उद्‍गम है-संसार में उसका क्या महत्व है ? इसके उत्तर में वितर्क करना हीनता का द्योतक होगा ।

नारी केवल सन्तान सम्पादिका ही नहीं, पालिका तथा सञ्चालिका भी है। संसार का प्रत्येक प्राणी माँ के गर्भ से जन्म लेता है, उसकी गोद में पलता और उसका ही स्वभाव संस्कार लेकर बढ़ता है। समाज का प्रत्येक सदस्य माँ के दिये मूल संस्कारों को विकसित करता हुआ व्यवहार किया करता है, और माँ अपने वही संस्कार तो सन्तान को दे सकती है जो उसके पास होंगे। शुभ संस्कारों वाली माँ शुभ और अशुभ वाली अशुभ दे सकेगी। वह बात उसके वंश की नहीं कि स्वयं तो असंस्कृत हो और अपनी सन्तानों को सुसंस्कृत बना सके।

जननी के रूप में नारी के इस महत्व के साथ, पत्नी के रूप में भी उसका बहुत महत्व है। नारी पुरुष की अर्धांगिनी कही गई है। जिस प्रकार पुरुष के बिना नारी अपूर्ण है उसी प्रकार नारी के बिना पुरुष भी अपूर्ण है। नारी और पुरुष ही मिलकर एक 'मानव जीवन' की पूर्ति करते हैं। इस दार्शिनिक अथवा भावनात्मक आधार पर ही नहीं, भौतिकता के ठोस धरातल तथा वास्तविकता की यथार्थ भूमि पर भी नारी पुरुष की अर्धाङ्गनी है। वह संसार की कठिनाइयों और पारिवारिक सुख-सुविधा में पुरुष की समान साझीदार है। परिवार बसाने और वंश परम्परा का प्रतिपादन करने में नारी पुरुष की अनिवार्य भार्या और समान सहचरी है। उसके अभाव में यह दोनों स्थितियाँ असम्भाव्य हैं।

पुरुष एक उद्योगी तथा उच्छृंखल इकाई है। परिवार बसाकर रहना उसका सहज स्वभाव नहीं है। यह नारी की ही कोमलता कुशलता है जो उसे पारिवारिक बनाकर प्रसन्नता की परिधि में परिभ्रमण करने के लिए लालायित बनाये रखती है। नारी ही पुरुष की उद्योग उपलब्धियों को व्यवस्था एवं उपयोगिता प्रदान करती है। पुरुष नारी के कारण ही पुत्रवान है, परिवाहक है और प्रसन्नचेता है। पत्नी के रूप में नारी का महत्व असीम है, अनुपम है।

पारिवारिकता ही नहीं, सामाजिकता में भी नारी का महत्व महान है। समाज केवल पुरुष वर्ग से ही नहीं बना वह स्त्री पुरुष दोनों से ही

बनता है । आज समाज में यदि नारी अपने आपको दूर करले अथवा अपने को निकाल ले तो क्या समाज का रथ केवल पुरुष रूपी एक पहिए पर एक दिन भी चल सकता है ? नारी समाज की आधी जनसंख्या है । समाज के बहुत से ऐसे काम हैं जो नारी द्वारा ही किये जा सकते हैं । सदस्य, जिनसे मिलकर समाज बनता है, नारी ही उनकी जननी है और वही उनका लालन-पालन करती है । नारी समाज की आधी शक्ति है । 'एकोऽहम बहुस्याम्' के सिद्धाँत पर समाज की जनसंख्या का सृजन नारी ही करती है ! नारी ही अपनी योग्यता, दक्षता एवं कुशलता के अनुसार समाज को अच्छे बुरे सदस्य और राष्ट्र को नागरिक देती है । अपने गुण एवं स्वभाव के अनुसार अपनी सन्तानों को ढाल-ढालकर देश व राष्ट्र को देना नारी का काम है । देश के निवासी शूरवीर, त्यागी बलिदानी अथवा कायर, कुटिल और आचरण हीन बनते हैं, यह जननी की ही गौरव-गरिमा पर निर्भर है । सारांश यह है कि जिस प्रकार की राष्ट्र की जननी नारी होगी राष्ट्र भी उसी प्रकार का बनेगा । सामाजिकता अथवा राष्ट्रीयता के रूप में नारी का यह महत्व सर्वमान्य ही मानना पड़ेगा ।

धार्मिक क्षेत्र में भी नारी का महत्व अप्रतिम है । विद्या, वैभव और वीरता की अधिष्ठात्री देवियाँ शारदा, श्री और शक्ति नारी की प्रतीक हैं । सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की स्फुरण शक्ति, माया भी नारी मानी गई है । इसके अतिरिक्त यज्ञादि जितने धार्मिक अनुष्ठान पुरुष द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं वे नारी को साथ लेकर पूर्ण किये जाते हैं । यह बात सही है कि आज यद्यपि उनमें रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास तथा अज्ञान का दोष अवश्य आ गया है तथापि नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा धर्म को अधिक दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हैं । यही नहीं अनेक बार अन्धकार युगों में जब कि आक्रान्त अथवा सक्रान्त धर्म अथवा आस्तिकता से विचलित होने लगे हैं, नारियों ने धर्म भावना की रक्षा की है और घरों में चोरी छिपे, सही-गलत, उल्टे-सीधे, धार्मिक-कृत्य, व्रत उपवास और पूजा के रूप में करती रही

हैं । समय-समय पर उन्होंने धर्म-रक्षा में अपने प्राण तक दिए हैं और आज के इस विकृतिकाल में भी धर्म-धारणा में पुरुषों से आगे ही हैं । पुरुष के नास्तिक हो जाने पर भी नारियाँ बहुधा घरों में आस्तिकता तथा श्रद्धा-विश्वास बनाये रखती हैं । आज भी कुप्रगतिशीलता की लहर से अप्रभावित रहकर करोड़ों नारियाँ एक प्रकार से बहुत अंशों तक भारतीय धर्म तथा सभ्यता एवं संस्कृति की संरक्षिका बनी हुई हैं । धार्मिक क्षेत्र में यह कुछ कम महत्व की बात नहीं ।

इस प्रकार सभी क्षेत्रों में नारी का इतना महत्व होते हुए भी आज हमारे समाज ने उसे इस दयनीय दुर्दशा में पहुँचा दिया कि देख-सुन और सोच-समझ कर न केवल दुःख ही होता है बल्कि शर्म से गर्दन झुक जाती है । विचार आता है कि क्या वास्तव में हम इतने आततायी हैं कि राष्ट्र की जननी और पुरुष की सहयोगिनी, सहचरी और अनुवर्तिनी को पैर की जूती और पशुओं से भी बदतर बना दिया है । स्वार्थी पुरुष वर्ग ने उसके शैक्षणिक एवं सामाजिक, अधिकार तथा शारीरिक, मानसिक बौद्धिक विकास के सारे अवसर एवं सम्भावनायें अजगर की तरह निगल लिये हैं ।

आज हमारे समाज में अशिक्षा का अभिशाप नारीवर्ग को सर्प की तरह ग्रसे हुए हैं । शिक्षा के अभाव में भारतीय नारी असभ्य, अदक्ष अयोग्य एवं अप्रगतिशील बनी हुई चेतन होते हुए भी जड़ की तरह जीवन बिता रही है । समाज एवं राष्ट्र के लिए उसकी सारी उपादेयता नष्ट होती जा रही है । उसे समाज एवं राष्ट्र की गतिविधि में हाथ बटाना तो दूर उसके ज्ञान का भी अवसर नहीं मिलता ।

अशिक्षा तथा अज्ञान ने उन्हें कायर और कलहनी बना दिया है । घर में अकेले रहते अथवा मार्ग में चलते हुए इस प्रकार दबी-दबी और भयग्रस्त चला करती हैं मानो उन पर अभी ही कोई आपत्ति आने वाली है, जिससे वे अपनी रक्षा न कर पायेंगी और वास्तव में जब कोई आपत्ति अथवा आशंका आ जाती है तब प्रतिकार करने के स्थान पर किंकर्तव्य-

विमूढ़ होकर काँपने रोने और अपना अहित होते रहने के अतिरिक्त उनके पास कोई उपाय ही नहीं होता । अप्रियताओं, प्रतिकूलताओं अथवा आपदाओं का प्रतिकार करने का तो उनमें साहस ही नहीं होता है और न बुद्धि ।

गृहणी होते हुए भी अशिक्षा के कारण नारी ठीक मानों में गृहणी सिद्ध नहीं हो पा रही है । बच्चों के लालन-पालन से लेकर घर की साज संभाल तक किसी काम में भी कुशल न होने से उस सुख-सुविधा को जन्म नहीं दे पाती घर में जिसकी अपेक्षा की जाती है । घर को सजा संभालकर रखना तो दूर उसकी अदक्षता उसे और भी अस्त-व्यस्त बनाये रहती है । शिक्षा के अभाव में कोमल-वृत्ति नारी कर्कशा एवं कलहनीय होती जा रही है । हर समय कोप करना, बात-बात पर बच्चों को मारना, पीटना, अकारण में कारण निकाल कर लड़ना-झगड़ना और खटपाल ले लेना, उनके स्वभाव का अंग बन गया है । वह परावलम्बिनी और परमुखापेक्षणी बनी हुई विकास से बंचित, शिक्षा से रहित गूढ़-मूढ़ और मूक जीवन बिताती हुई अनागरिक पशु की भाँति परिवार ढोये जा रही है । पुरुष उसे स्वतन्त्रता दे और समाज सुविधायें, फिर देखो आज की यह फूहड़ नारी कुशल शिल्पी की भाँति सन्तान, घर और समाज को रच देती है या नहीं ?

नारी को विकसित किया जाना आवश्यक है

व्यक्ति का निर्माण उसकी माता करती है । माता का ज्ञान, अनुभव और अन्तःकरण जितना विकसित होगा, उतना ही बालकों का मन और मस्तिष्क भी विकसित होगा । अच्छे पेड़ हमेशा अच्छी भूमि में पनपते हैं । बीज कितना ही बढ़िया क्यों न हो यदि भूमि ऊसर है तो वहाँ न तो फसल पक सकती है और न अच्छा बगीचा लग सकता है । इसी प्रकार अच्छी माताओं के होने पर सुसन्तान की आशा की जा सकती है और जिन घरों में सुसंगति है उन्हें ही घर कहना चाहिए । अन्यथा दुर्बुद्धि और दुर्गुणी, रोगी और आलसी बालकों के घर को तो नरक का नमूना ही कह सकते हैं । वहाँ निरन्तर कलह, ईर्ष्या, द्वेष, असन्तोष, चोरी, अवज्ञा, अपकीर्ति एवं उत्पात की आग जलती रहेगी । ऐसे घरों में उसी तरह

गुजारा करना पड़ता है जैसे भूत मरघट में अपनी जिन्दगी गुजारता है ।

माता के संस्कार बालक पर पड़ जाते हैं, यह एक निश्चित तथ्य है । इसलिए जिन्हें अपने घर को सुसंतति से हरा-भरा, फला फूला देखना हो उन्हें पहले माता का निर्माण करना चाहिए । लोग इतना ही करते हैं कि बालक स्वस्थ हो इसके लिए गर्भावस्था में स्त्री को घी, दूध, मेवा लड्डू आदि खिलाते हैं । दूध अधिक निकले इसके लिए माता को जीरा, सोंठ, बबूल का गोंद आदि खिलाते हैं । इससे लोगों की बुद्धि में इतनी समझदारी तो जान पड़ती है कि वे माता को खिलाने से उसका लाभ बालक को मिलने की बात स्वीकार करते हैं । बच्चा बीमार हो तो माता को परहेज से रहने की, अमुक चीज खाने, अमुक न खाने की हिदायत करते हैं । पर बुद्धिमानी यहीं समाप्त हो जाती है । कैसा अच्छा होता यदि लोग यह भी अनुभव करते कि माता के ज्ञान, अनुभव और अन्तःकरण के विकास का प्रभाव बालकों पर अवश्य पड़ेगा । इसलिए सन्तान को सुयोग्य बनाने की जानकारी लोगों की रही होती तो आज हमारे समाज का स्तर ही दूसरा हुआ होता ।

राम हमारे घरों में आयें इसके लिए कौशल्या की जरूरत है । कृष्ण का अवतार देवकी की कोख ही कर सकती है । कर्ण, अर्जुन और भीम के पुनः दर्शन करने हों तो कुन्ती तैयार करनी पड़ेगी । हनुमान चाहिए तो अंजनी तलाश करनी होगी । अभिमन्यु का निर्माण कोई सुभद्रा ही कर सकती है । शिवजी की आवश्यकता हो तो जीजाबाई का अस्तित्व पहले होना चाहिए । यदि इस ओर से आँखें बन्द करली गईं और भारतीय नारी को जिस प्रकार अविद्या और अनुभवहीनता की स्थिति में रहने को विवश किया गया है, उसी तरह आगे भी रखा गया तो आगामी पीढ़ियाँ और भी अधिक मूर्खता एवं उद्दण्डता लिये हुए आवेंगी और हमारे घरों की परिपाटी को नरक बना देंगी । परिवारों से ही समाज बनता है । तब सारा समाज और भी घटिया लोगों से भरा होने के कारण अबसे भी अधिक पतनोन्मुख हो जायगा ।

आज हमारे बालकों की क्या स्थिति है ? इसके लिए बाहर ढूँढ़ने जाने या कोई रिपोर्ट तैयार करने की जरूरत नहीं । इसमें से हर कोई

अपने-अपने घरों को देख सकता है और छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि अपने बच्चों के गुण-कर्म स्वभाव के सम्बन्ध में सन्तोष है या असन्तोष ? अब अन्धे माता पिता को कन्धे पर बिठाकर तीर्थ यात्रा कराने वाले ढूँढ़े न मिलेंगे । पिता का संकेत और विमाता की इच्छा मात्र प्रतीत होते ही वन-गमन करने वाले राम आज किसी घर में तलाश तो किये जायें । भाई के लिए ज़ान देने वाले भरत और लक्ष्मण शायद ही किसी विरले घर में मिलें ? पति के आदेश पर बिक जाने वाली शैव्या आज कितने पतियों को प्राप्त है, यह जानना कठिन है । ऐसे उच्च मानसिक स्तर से भरे हुए परिवार आज ढूँढ़े नहीं मिल सकते । इसका एक मात्र कारण है-नारी की अधोगति । जब सोता ही सूख गया तो नाले में पानी कहाँ से बहेगा ? जब नारी ही दुर्दशाग्रस्त स्थिति में पड़ी है तो उससे उत्पन्न होने वाली संतान के सम्मुन्नत होने की आशा करना दुराशा मात्र ही है ।

हमारा व्यक्तिगत और राष्ट्रीय भविष्य इस बात पर निर्भर है कि भावी पीढ़ियाँ सुसंस्कृत हों । स्कूली शिक्षा से आजीविका उपार्जन करने तथा विविध क्षेत्रों की साधारण जानकारी मिलने की बात पूरी हो सकती है, पर वे सद्‌गुण जो मानव की प्रधान सम्पत्ति हैं और जिनके ऊपर व्यक्ति तथा राष्ट्र की श्रेष्ठता निर्भर करती है स्कूलों में नहीं सीखे जा सकते । उनके शिक्षण का सही स्थान है-घर का वातावरण और उसका निर्माण करती है-गृहणी । व्यक्ति और राष्ट्र के लिए हो रहे अनेकों प्रयत्नों में सुगृहणी निर्माण का कार्य अत्यधिक आवश्यक है । उपेक्षा करने पर बड़ी से बड़ी प्रगति भी व्यर्थ ही सिद्ध होगी । क्योंकि जब आगामी पीड़ियों का व्यक्तित्व ही विकसित न हो सका तो बढ़ी हुई समृद्धि का भी कुछ लाभ न उठाया जा सकेगा वरन् बन्दर के हाथ में पड़ी हुई तलवार की तरह उसका दुरुपयोग एवं दुष्परिणाम ही हाथ लगेगा ।

एक बड़ी चिन्ता की बात यह है कि हमारी आधी आबादी-नारी, कैदियों की भाँति घरों की चहार-दीवारी में कलङ्कियों की तरह मुँह पर पर्दा डाले घर वालों के लिए एक भार बनी बैठी रहे । इससे भी हमारा पारिवारिक एवं राष्ट्रीय अर्थ-तन्त्र असन्तुलित ही होगा । यदि उनकी

सामर्थ्य को विकसित किया जाय तो राष्ट्र को समुन्नत बनाने में इतना योग मिल सकता है जितना कितनी ही विशालकाय योजनायें भी नहीं दे सकतीं ।

जिन नारियों को हम माता, पत्नी, बहिन या पुत्री के रूप में प्यार करते हैं, जिन्हें सुखी बनाने की कुछ चिन्ता करते हैं, उनके लिये रूढ़िवादी मान्यताओं द्वारा हम अपकार भी पूरा करते हैं । किसी स्त्री का जब सूर्य अस्त होता जाता है और घर की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं होती तो उस बेचारी पर कैसी बीतती है, इसे हममें से हर कोई जानता है । पर्दा-प्रथा के कारण जो नारी बाजार में साग-सब्जी खरीद कर लाना भी नहीं सीख सकी, किसी से बात करना भी जिसे नहीं आता वह मुसीबत के समय पति या बच्चों के लिये दवा खरीदने या चिकित्सक को बुलाकर लाने में भी समर्थ नहीं हो सकती । ऐसी स्त्रियों को जब अपने और अपने बच्चों के गुजारे की समस्या सामने आती है तब आगे केवल अन्धकार ही दीखता है । किसी के दरवाजे पर भिखारी की तरह अपमान पूर्वक टकड़ों से पेट भरते हुए उन्हें जिस व्यथा का सामना करना पड़ता है उँसकी कल्पना यदि नारी को बन्धन में रखने वाले करें तो उनकी छाती पसीजे बिना न रहेगी । मानवता का दृष्टिकोण अपनाया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि नारी का भविष्य अंधेरे में लटकता हुआ छोड़ना अभीष्ट न हो तो उसे स्वावलम्बी, अपने पैरों पर खड़ी होने योग्य बनाना ही चाहिए ।

दहेज समस्या कोई स्वतन्त्र समस्या नहीं, नारी की अयोग्यता की समस्या है । दहेज वे लोग माँगते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है । उनका कहना है कि हमारे घर की अच्छी आर्थिक स्थिति का लाभ तुम्हारी लड़की उपभोग करे इसके बदले में हमें दहेज की कीमत मिलनी चाहिए । इस माँग का दूसरा उत्तर यह हो सकता है कि दहेज का पैसा लड़की की योग्यता बढ़ाने में खर्च कर दिया जाय और उसे किसी गरीब किन्तु योग्य लड़के के साथ ब्याह दिया जाय । लड़की अपनी योग्यता से कुछ उपार्जन करके उस लड़के की आय को बढ़ा सकती है और उससे अधिक आनन्द में रह सकती है जितनी किसी अमीर घर

में-केवल उन लोगों के अनुग्रह और अपनी दीनता के बल पर सुखी रहती । यदि लड़कियाँ सुशिक्षित हो जायें तो दहेज माँगने वालों को सौदा पटाने की हिम्मत ही न पड़े । फिर भी यदि दहेज का राक्षस न मरे तो लड़कियाँ अपनी शिक्षा के बल पर आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करके अविवाहित जीवन भी व्यतीत कर सकती हैं ।

किसी भी दृष्टिकोंण से विचार किया जाय यह नितान्त आवश्यक है कि नारी को वर्तमान दुरवस्था में न पड़ी रहने देकर उसे ऊपर उठाया जाय, आगे बढ़ाया जाय । उसकी शक्ति और सामर्थ्य को विकसित करने में ही समाज, व्यक्ति तथा राष्ट्र का कल्याण है ।

स्त्री-शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता

जातीय जीवन का विकास सामाजिक सुव्यवस्था और उसके श्रेष्ठ संस्कारों पर निर्भर है । भौतिक सम्पदायें और बाह्य जीवन की सफलतायें मिलकर ही शान्ति व सुव्यवस्था स्थापित नहीं कर सकतीं । आन्तरिक स्वच्छता के अभाव में किसी भी देश जाति या संस्कृति में सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ देर तक टिक नहीं सकतीं ऊपर से बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत हों और अन्तर्मन दूषित विचारों की सडाँध से भर रहा हो तो कौन जाने कब कोई न कोई विग्रह उत्पन्न हो जाय ?

समाज की अन्तश्चेतना गृहस्थाश्रम को माना गया है । गृहस्थ का आधार-सूत्र स्त्री-पुरुष की मिली-जुली इकाई को मानते हैं । इस प्रकार जब कभी समाज संस्कार की आवश्यकता प्रतीत होती है तो समाज के इसी मूलाधार गृहस्थ-जीवन को ही अधिक दृढ, सुसंस्कृत और सुव्यवस्थित बनाने की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

ब्रह्मचर्य और उत्तम चरित्र का निर्माण संस्कारवान गृहस्थ जीवन में होता है । कर्मशीलता, दृढ़ता और नैतिक जागृति भी पारिवारिक सौमनस्यता पर अविलम्बित है । देश, जाति और संस्कृति इसी से प्रभावित होते हैं । इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुष की जागृति मात्र पर्याप्त नहीं है । नारी की विशेषतायें भी उतनी ही अनिवार्य हैं । बाह्य व्यवस्थाऔर आन्तरिक सद्भाव मिलकर ही गृहस्थ जीवन को निर्मल,

पवित्र एवं उदात्त बनाते हैं । इसके लिए स्त्रियों को भी संस्कारवान होने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि पुरुष को ।

आज की अनियन्त्रित अन्ध परम्पराओं के कारण हमारे गृहस्थ जीवन में बड़ी गहराई तक कुसंस्कारों ने जड़ें जमा ली हैं । मनोबल की हीनता, पारिवारिक पतन, भय, क्रोध, कलह और कटुता के कारण पारिवारिक जीवन बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो चुका है । हमारी अविवेक पूर्ण परम्परायें ही इसकी जवाबदार हैं । स्त्री-शिक्षा इसमें प्रमुख हैं । गृहस्थ की दुर्दशा का कारण आज नारियों की अशिक्षा ही है । ज्ञान के अभाव में उनका न तो बौद्धिक विकास हो पाता है न नैतिक । इसका प्रभाव सम्पूर्ण गृहस्थियों पर पड़ता है । जहाँ सुख और शान्ति की निर्झरिणी प्रवाहित होनी चाहिए थी, वहाँ नारकीय नैराश्य छाया रहता है । इस अन्धकार में जातीय-विकास की गाड़ी मुश्किल से आगे बढ़ पाती है ।

पुरुष का सम्पूर्ण जीवन स्त्री पर आधारित रहता है । पुरुष की निर्माणकर्त्री नारी है । उसके कल्याण-अकल्याण, ऊँच-नीच, सुख-दु:ख, पतन और उत्थान का सम्पूर्ण भार स्त्री पर है । बच्चा जब जन्म लेता है उसके बाद किशोरावस्था में आने तक वह अधिकांश माता के संसर्ग में ही रहता है । माता का अर्थ यहाँ उन सभी नारियों से होता है जो एक घर, एक आँगन में रहती है । इसी बीच बालक में संस्कार पड़ते हैं । अच्छे या बुरे संस्कारों का अनुकरण वह अपनी समीपवर्ती माताओं से ही करता है । यदि स्त्रियों में श्रेष्ठ संस्कार न हुए तो बच्चे का स्वभाव भी मलिन बनने लगता है । इसलिए स्त्रियों को संस्कारवान बनाने के लिए उनकी शिक्षा उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है, अनिवार्य भी है ।

इस सम्बन्ध में आज का समाज अनेक तर्क व भ्रान्तिमूलक दुर्बल धारणायें बनाये बैठा है । लोगों की यह मान्यता है कि स्त्री-शिक्षा से अनर्थ अनाचार और उपद्रव खड़े होते हैं और पढ़ी लिखी स्त्रियों से गृह संचालन, सन्तान पालन, भोजन व्यवस्था व पुरुषों की देख रेख नहीं हो पाती । इस प्रकार की आशंका प्रकट करने वाले व्यक्तियों का ध्यान हम संसार के प्रगतिशील देशों की ओर ले जाना चाहते हैं । अमेरिका, ब्रिटेन,

कनाडा, फ्रान्स, आस्ट्रेलिया, रूस, जापान देशों की उन्नति का अधिकांश श्रेय वहाँ की नारी शिक्षा को ही है । क्या कोई कह सकता है कि उनके बच्चों का लालन पालन ठीक प्रकार नहीं होता ? क्या वहाँ के पुरुषों की प्रगति रुकी है ?

सच बात तो यह है कि बौद्धिक विकास के अभाव में हमारी मातायें न तो ठीक प्रकार बच्चों का लालन-पालन कर पाती हैं न पतियों की समुचित व्यवस्था । घर के कामों में भी फूहड़पन देखा जा सकता है । पर्दे के अन्दर घुटती हुई नारियों को यह भी पता नहीं होता कि मानव-जीवन की समस्यायें क्या हैं और उन्हें किस प्रकार सुलझाया जा सकता है ? अशिक्षित पति-पत्नी तो किसी प्रकार रोते झीकते गृहस्थ की गाड़ी धकेलते रहते हैं ।

एक अशान्ति एवं अतृप्ति आज हर सदगृहस्थ अनुभव कर रहा है, किसी को भी पारिवारिक जीवन में सुख व चैन नहीं मिल पा रहा है । इसका एक ही कारण है कि हमारी बेटियों को खुले वातावरण में रहकर बौद्धिक विकास नहीं करने दिया जाता । कुँए के मेढ़क की तरह बेचारी जेवर, चूल्हे, चौके तक ही सीमित रह जाती हैं । दुर्भाग्य से यदि किसी को वैधव्य मिल गया तो उसकी यन्त्रणाओं की सीमा ही टूट जाती है । अपने हाथों कमाकर खा सकने जितनी शक्ति भी नहीं रहने दी, इस अभागिनी अशिक्षा ने । फिर भी हम हैं जो इस आवश्यकता को समझ नहीं पा रहे और स्त्री-शिक्षा से मुँह छिपाये बैठे हैं ।

स्त्रियाँ अपने आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हुए भी अपनी रुचि, इच्छा-शक्ति और सुविधानुसार साहित्य, सङ्गीत, गृह-कला, कला-कौशल का ज्ञान प्राप्त करके गृहस्थ जीवन को समुन्नत बना सकती हैं । मानसिक और नैतिक शक्ति के विकास से मनुष्य जीवन को सफल बनाने में अपना अमूल्य सहयोग दे सकती हैं । जिस स्त्री को बौद्धिक विकास करने का अवकाश न मिला हो उसके जीवन में कभी सरसता न आ सकेगी । हम जिस अभिव्यक्ति की उनसे कामना करते हैं वह शिक्षा की कमी के कारण वे दे नहीं पायेंगी और गृहस्थ-जीवन शुष्क नीरस एवं निष्प्राण ही बना रहेगा ।

यह सरसता प्राप्त करने के लिए और स्त्रियों को अपना दायित्व कुशलता-पूर्वक निभाते रहने के लिए उनका स्वावलम्बी बनाना आवश्यक है । अशिक्षा के कारण वे गृहस्थी की उन्नति न कर पायेगी । केवल कठपुतली की भाँति पुरुष की दासी बनी हुई दासी जैसे कर्त्तव्यों का ही निर्वाह कर सकती हैं । जिस स्नेह, प्रेम, आत्मीयता सरसता की अपेक्षा की गई थी उसे वह बेचारी कहाँ से दे पायेगी ।

भारतीय संस्कृति का संगठन ऋषियों ने इस प्रकार किया है कि इसमें स्त्री शिक्षा से किंचित मात्र हानि की आशंका नहीं, यदि पुरुष अपना कर्त्तव्य उचित रीति से चलाते रहें तो जिस स्त्री शिक्षा को स्वछन्द बनाने वाली या आफिसों की ओर दौड़ने वाली अर्थकरी विद्या मानते हैं वह वैसी सचमुच में सिद्ध न हो ।

जो शिक्षा पुरुष में मानसिक नैतिक और आध्यात्मिक गुणों का प्रकाश करती है उससे स्त्रियों के भी मन और हृदय उन्नत और विशाल बनते हैं । इससे वह पुरुष को विवेकवान् बनाती है । उसकी महानता बढ़ाकर पुरुषार्थ जगाती है । गृह व्यवस्था सन्तान पालन का कार्य और भी बुद्धिमत्तापूर्ण चला पाने की क्षमता उसे मिलती है, जिससे सुख संतोष और शान्ति की परिस्थितियाँ बढ़ती हैं । शिक्षित नारियाँ हर प्रकार पुरुषों को सहयोग दे सकती हैं ।

गृहस्थ जीवन की दुर्दशा सुधारने के लिए स्त्री को शिक्षित बनाने में तनिक भी देर नहीं की जानी चाहिए यद्यपि एक लम्बी पराधीनता के बाद आज हमारी संस्कृति में नई चेतना का संचार हुआ । यह प्रसन्नता की ही बात है कि अब लोग जीवन के प्रत्येक पहलू पर सही सोचने लगे हैं । अब नारी शिक्षा की भ्रान्त धारणाओं का अन्त हो चला है और इसे सामाजिक शक्ति का आधार माना जाने लगा है । जातीय जीवन के जीर्णोद्धार के लिए हमें स्त्री शिक्षा के शुभ-कार्य को पूर्ण उत्साह, लगन व तत्परता के साथ आगे बढ़ाना चाहिए । हमारे सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में सुख और शान्ति की हरियाली इसी प्रयत्न के आधार पर लहलहाती दिखाई पड़ने लगेगी ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा